International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 28-11-2019; Accepted: 29-11-2019
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 39-41

आचार्य विष्णु कान्त शास्त्री के साहित्य में सामाजिक चिन्तन

डॉ0 सुनीता देवी
रिसर्च फैलो हिन्दी विभाग हि0 प्र0 विश्वविद्यालय शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

समाज के समक्ष आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री का व्यक्तित्व सरल, सौम्य, सौरम्य रहा है इसी व्यक्तित्व को लिए उन्होंने समाज को आकृष्ट किया। 'कल्याणमल लोढ़ा' ने शास्त्री के समाज चिन्तन के विषय में उनके व्यक्तित्व को इस तरह व्याख्यायित किया है, "मेरी यह मान्यता है कि अयस्काँत मषि की भान्ति वही व्यक्ति समाज को आकृष्ट करता है। जिसमें सरलता, सौहार्द्र और सौरम्य के साथ–साथ नियमबद्धता, मितभाषिता और संस्कृति के महान् मूल्यों की अवधारणा हो।" [1] शास्त्री जी ने समाज के समक्ष ज्ञान और बुद्धि के द्वारा अपने कर्मों का ताना–बाना बुना है। उनकी धारणा है कि मनुष्य वही है जो परोपकारी तथा मनुष्य की रक्षा करता है, साम्य के भाव को जनमानस के सामने रखता है। अपनी चिन्तनपद्धति में मानवतावादी आदर्श, भारतीय भक्ति, संस्कृति व साहित्य की अवधारणा को उन्होंने व्याख्यायित किया है शास्त्री जी के शब्दों में, "मैं व्यक्ति को बांटकर नहीं देखता हूँ। मैं समग्रता से देखता हूँ, जैसे इन्द्रधनुष के अलग–अलग रंगो को देखने की अपेक्षा उसकी समग्रता से जो सौन्दर्य की सृष्टि होती है, उससे मैं अभिभूत होता हूँ।" [2] आर्य विष्णुकान्त शास्त्री शिलाधर्मी नहीं आकाशधर्मी है। आज वे समाज के समक्ष गुरु, मित्रों के पारिवारिक रिश्तों के बीच जीने वाले व्यक्ति हैं। वे मानते हैं कि सामाजिक श्रद्धा का आधार 'आचरण' है। 'वेष' या 'पद' नहीं। इस श्रद्धा को पाने का पथ भी तुलसी का सुझाया पथ है–

"तुलसी जो कीरति चहहिं, पर की कीरति खोइ।
तिनके मुँह मसि लाकि हैं मिटिहिं न मरिहैं धोई।"[3]

शास्त्री जी का मत है कि 'कीरति' पाने के लिए दूसरे की 'कीरति' खोना जरुरी नहीं है इसनिष्कपट सहजता का ही एक पक्ष निन्दा विमुखता है। शास्त्री जी को 'बतरस' में आनन्द आता है, निन्दा रस में नहीं। वे समाज की 'उलाहना' जरुर देते हैं, मगर क्या मजाल कि निन्दा का एक शब्द भी उनकी जुबान से सुन लें।

"सिर्फ बातों से भला कब बन सकी है बात?
शक्ति आवश्यक, यहाँ तो शक्ति का संघात।
सत्य तो यह, संगठन ही शक्ति का उत्स
जो खड़ा हो प्रेम, निष्ठा ध्येय पर अवदात।"[4]

कवि का तात्पर्य है कि जब समाज में संगठित शक्ति नहीं होगी, तब तक जनमानस शक्ति संग्रहीत नहीं कर सकता इसके लिए आवश्यक है, समाज का संगठन। शास्त्री जी समाज व देश के समक्ष 'संघे शक्ति कलौयुगे' की भावना को रखते हैं। इनका सामाजिक चिन्तन भावात्मक एकता को प्रमुख रुप से उकेरता है। इनका मानना है कि सामाजिक संगठन ही मनुष्य का उद्धार कर सकता है। समाज का शुद्ध सात्विक रुप ही मनुष्य में शक्ति का संचार कर सकता है कवि जी कहते हैं–

"संगठन, जो कर सकेगा जाति का उद्धार
संगठन, जो शुद्ध सात्विक शक्ति का आगार
जो संजोये प्राण में शाश्वत सरस हिन्दुत्व
चिर पुरातन धर्म का होगा नया श्रृंगार।"[5]

शास्त्री जी कहते हैं कि आधुनिकता की अंधी दौड़ में आज सब पीछे छूट गया है। हमारे संस्कार, परम्पराएं, रहन–सहन, हमारा धर्म, हमारी भाषा। सभ्यताओं के उदय से पनपे पारस्परिक सौहार्द पर बाजार हावी हो रहा है। आधुनिकता के नाम पर ऐसे विचारों और कारनामों को भुनाया जा रहा है जो स्वार्थ केन्द्रित हैं। नैतिकता, शालीनता और विनम्रता की कब्रें खोदने वाला मनुष्य धीरे–धीरे इन कब्रों में धंसता जा रहा है। आज सामाजिक मूल्यों पर कम और सामाजिक यथार्थ पर अधिक बहस होती है। किन्तु हमारा उद्देश्य उस यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए लुप्त प्राय हो चुके सामाजिक मूल्यों की पुनस्थापना करना है। अपनी काव्य पंक्तियों में वे कहते हैं–

"तुम विकास के पथ पर बढ़ते रहो निरन्तर
तेजस्वी आनन हो श्रद्धा भीगा अन्तर
सपनों का संसार तुम्हारा सच बन जाए
नई ज्योति ले चाँद उतर आँगन में आए।"[6]

यदि आज के समय की बात की जाए तो स्वार्थपरकता ने जिस प्रकार से व्यक्ति को समाज से कटकर एक सचेत घेरे के भीतर व्यक्तित्वोन्मुख कर दिया है, ऐसी कालसरणी में शास्त्री जी की कविता और भी उपयोगी सिद्ध हुई हैं आज हर व्यक्ति अपनी 'मैं' की सर्वस्थापना चाहता है तथा उसकी मानसिकता ने प्रेम के अर्थ को अनर्थ कर दिया और मूल्यों का छलनी कर दिया व्यक्ति जितनी द्रुतगति से सामाजिक और नैतिक मूल्यों को भुला रहा है, उतनी ही तेजी से इन मूल्यों को चिन्तन बनाए रखने की कोशिश में जुटे व्यक्तित्व भी अब आधुनिक भाव बोध के बीच अनुपयुक्त स`लगने लगे हैं तभी शास्त्री जी कहते हैं–

"तुमने अपनों को अपना पन सिखलाया
तुमने अपनों को अपना पथ दिखलाया
तुमने अपनों को रोका 'पर' होने से
असल मणि तजकर नकीली मणि ढोने से
भारत के हे कवि, गुरु नेता लासानी
गूँजेगी ही यह तेरी विमल कहानी।" [7]

सामाजिक अनुसंधान में शास्त्री जी दर्शाते हैं कि इस विशाल मानव सागर के बीच अपनी पहचान को बनाये रखने की इच्छा पर भले ही प्राचीन मूल्यों और संस्कारों की पैरवी का आरोप आज की पीढ़ी को द्रष्टव्य होता हो, किन्तु उपभोक्तावाद, पश्चिमी

अंधानुकरण और व्यवसायीकरण की कृत्रिम सुगन्धों से यह कहीं बेहतर है, क्योंकि इनकी कविताएं चन्दन वन के तरुओं से छूकर आती हैं, जो सारे परिवेश को पवित्र और पावन कर देती हैं।

शास्त्री जी एक अध्यापक, समीक्षक, कवि विचारक अध्यात्म व्याख्याता, एक सर्वप्रिय प्रशासक, गोस्वामी जी की विनयभावना को आदर्श मानकर जीवन जीने की विश्वासी, दृढ़ निश्चयी, अपनी मान्यताओं के प्रति पूर्ण रुपेण समर्वित, सब कुछ होते हुए भी एक कर्मठ सन्यासी के रुप में समाज के सम्मुख आए हैं। उन्होंने एक रामभक्त की भान्ति समाज को कर्म के प्रति निरन्तर जागरुक रहने की प्रेरणा दी। सामाजिक कुरीतियों के समक्ष रघुवीर के प्रति अडिग आस्था को रखा और प्रवचनों द्वारा कहा कि इसी आस्था से जीवन का अंह समाप्त होता है। स्नेह कर्तव्य निष्ठा, आस्था त्याग, उदारता जैसे भाव शास्त्री जी द्वारा समाज के लिए रखे गए हैं–

"यह गजब देखो कि सूरज दीप का मुँहजाल
भ्रमर निर्वासित कामलवन मेंढकों का राज,
देवता तो अंध कारागार में है बंद
पूज रहा शैतान लेकिन पहन उसका ताज।" [8]

शास्त्री जी का मानना है कि जो व्यक्ति लोकजीवन में आकर स्वयं अपने मानस चक्षु से उसका अवलोकन करता है, वही व्यक्ति समाज को पूरी तरह जानता, समझता है। अपने समाजचिन्तन में उन्होंने उदारता व विनम्रता को समाज के समक्ष रखा है। मानव मात्र के समग्र कल्याण की असीम भावना से अद्भुत उनकी धार्मिक सरिता एक ऐसी दिव्य अनन्त चेतना की प्रतिमूर्ति है जो सबके लिए सर्वदा सर्वत्र प्रेरक और मंगल कर्ता है। वे मनसा, वाचा, कर्मणा, सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति के उपासक हैं, पक्षधर हैं। यह विश्व विकासशील है उसके विकास में सहयोग देना सबका कर्तव्य है। मनुष्य की सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना है। हि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हिकिंच। अन्य प्राणियों से इसकी श्रेष्ठता इसके विवेकपूर्ण चिन्तन और कर्म के कारण ही प्रमाणित होता है। इसके विवेकपूर्ण कर्तव्य को ही सृष्टि की चिरंतनता को बनाए रखने का उतरदायित्व हैं समय–समय पर उसमें विकृतियाँ आती हैं और उनका परमार्जन भी होता रहता है। आज की समाज व्यवस्था पर चिंता होनी स्वाभाविक है, किन्तु यह इसी प्रकार चलता रहेगा मानना भूल होगी। इसमें सुधार अवश्य होगा यह विश्वास लेकर चलना उचित है। उसके लिए सभी को यथाशक्ति, यथा संभव प्रयत्न करते रहना चाहिए यह आज की आवश्यकता है। तभी तो गोबिन्द मिश्र ने कहा है, "विष्णुकान्त शास्त्री के सन्निध्य में होना भारतीय संस्कृत के सान्निध्य में होना है। उनकी चिरसरणी में भारतीयता व प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था व्यक्त हुई है।

"हिन्दू संस्कृति की दीप शिक्षा बुझती थी,
चिर संचित हिन्दू मर्यादा लुटती थी।"[9]

वे मानते हैं कि भारतीयों को अपनी परंपरा और संस्कृति का ज्ञान अवश्य होना चाहिए साथ ही इन्हें यह भी पता होना चाहिए कि आध्यात्मिकता के क्षेत्र में भारत का क्या अवदान रहा है इसी का आधार स्तम्भ है इनके द्वारा प्रणीत ग्रंथ 'ज्ञान और कर्म' शास्त्री जी ने स्पष्ट किया है, "हिन्दू जीवन दर्शन तथा भारतीय जीवन दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त कर्म–सिद्धान्त है। इसके कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करके ही भारतीय संस्कृति का विकास हुआ है।"[10]

आचार्य शास्त्री जी कहते हैं कि हमें इस बात को समझना चाहिए कि आखिर वे कौन से गुण हैं जिन गुणों ने हमारे देश को जगद्गुरु बनाया था और उन गुणों को आज हम किस प्रकार में स्वीकार कर सकते हैं हमें विचार करना चाहिए कि हम अपने देश की परंपरा से जुड़े रहकर कैसे आधुनिक हो सकते हैं। कैसे हम वास्तव में अपनी उस उक्ति को चरितार्थ कर सकते हैं, विश्वविद्यालय का मतलब होता है– 'यत्र विश्व भवत्येक नीड़म।' जहाँ सारा संसार एक घोंसला बन जाए। सारे संसार के विद्वान जहां आ सकें। दृष्टि क्षेत्रिय न हो, जिसकी दृष्टि के सामने सारा विश्व है।"[11] शास्त्री जी मानते हैं कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य नौकरी की योग्यता उत्पन्न करना न होकर मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है। उसकी आत्मिक, नैतिक, मानसिक एवं भौतिक उननति का द्वारा खोलना है, शिक्षा के स्वरुप को व्यक्ति करते हुए उन्होंने डॉ0 मुखर्जी के विचारों को उद्धृत किय है, "हमारा आदर्श है निम्नतम भाव से उच्चतम भाव तक की शिक्षा के लिए व्यापक सुविधाएं प्रदान करना, अपनी व्यवस्था को इस प्रकार ढालना कि हमारे शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्यपूर्ण हो सकें और अपने नवयुवकों के अविकसित श्रेष्ठ गुणों को पूर्णरुपेण विकसित कर बौद्धिक, शारीरिक एवं नैतिक दृष्टियों से इस तरह प्रशिक्षित करना कि वे राष्ट्रोत्थान के कार्य में प्रत्येक क्षेत्र में गांवो में, कस्बों में, शहरों में निष्ठापूर्वक अपनी सेवाएं समर्पित कर सकें।"[12]

शास्त्री जी मानते हैं कि सबसे बड़ा शिक्षक धुरि प्रतिष्ठा का अधिकारी होता है जो स्वयं ज्ञानी भी हो, और ज्ञान के संक्रमण की कला में भी कुशल हो वही विद्वान धुरि प्रतिष्ठा का अधिकारी होता है। शास्त्री जी आकाशधर्मी गुरु को श्रेष्ठ मानते हैं उनका मानना है कि आकाशधर्मी गुरु शिष्य को वायु, प्रकाश तथा अवकाश देता है ताकि आगे बढ़ने की जितनी क्षमता है, वह उतनी विकसित भूमिका को अर्जित कर सके। आकाशधर्मी गुरु शिष्य की क्षमता को पहचानता है। यही नहीं अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा शास्त्री जी ने शिष्य के लक्षण को व्याख्यायित किया है। उन्होंने लिखा है कि, "शिष्य का आधारभूत लक्षण है, ज्ञान को प्राप्त करने के लिए अग्रणी होना।"[13] विद्यार्थी अध्यापक से प्रश्न करने का अधिकारी है लेकिन उसमें विनम्रता का भाव होना चाहिए जब तक विद्यार्थी का सिर श्रद्धा से झुकता नहीं है गुरु के सामने तब तक वह विद्या अर्जित नहीं कर सकता। इस प्रकार सामाजिक जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति समाजीकृत होकर अपने व्यक्तित्त्व का विकास करता है। सामाजिक संगठन की निरन्तरता के लिए सामाजिक सच्चाई आवश्यक है जो शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। शास्त्री जी कहते हैं कि यदि हम अपने राष्ट्र को महान बनाना चाहते हैं तो अपनी गौरवमयी परम्परा से प्रेरणा लेकर हमें सरकार की समृद्ध पाठ्यक्रम व परिवेश की संयोजना करनी होगी।

शास्त्री जी ने सामाजिक संगठन में अर्थ प्रणाली का गहरा महत्त्व बताया है इन्होंने अर्थ को इस तरह से परिभाषित किया है– 'अर्थ्यते इति अर्थः अर्थात् जिसको चाहा जाता है। अर्थ का मतलब साधारणतः समझा जाता है धन, दौलत किन्तु वास्तव में समस्त स्थूल भौतिक उपलब्धियों को 'अर्थ' पुरुषार्थ के अन्तर्गत ग्रहण करना चाहिए।" [14] शास्त्री जी कहते हैं कि मानव जीवन पर समग्र रुप से विचार कर निर्धारित किया गया है। मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों को चाहता है समाज के समक्ष इस बात को ध्यान देने की प्रेरणा देते हुए उन्होंने कहा है कि अर्थ हमारे बाहर रहता है। कोई भी अर्थ को अपने भीतर नहीं ला सकता। हमारा सब रुपया, पैसा, घर, ज़मीन, कल–कारखाने आदि हमसे बाहर हैं, सच्चाई यह है कि जिन वस्तुओं को हम अपना मानते हैं, ये वस्तुएं हमें पहचानती तक नहीं है यह याद रखना चाहिए कि अर्थ साधन मात्र है, वह साध्य नहीं हो सकता। यह भी सही है कि अर्थ जीवन यात्रा के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय है। अतः उसके महत्व को स्वीकार कर उसे पुरुषार्थ के रुप में स्वीकृत किया गया है। इनका मानना है कि जैसे–जैसे विश्व अर्थ व्यवस्था के एकाधिकार व नियन्त्रण के दबावों के फलस्वरुप सरकारें व सत्ता अपने जनकल्याणकारी दायित्वों से पीछा छुड़ा

रही है, वैसे–वैसे जनता में आर्थिक विषमता से उत्पन्न विसंगतियाँ बढ़ती जा रही हैं। सारी व्यवस्था पर अमीरों का कब्जा हो जाएगा तथा गरीब और अधिक गरीब होता जाएगा। उदारीकरण और निजीकरण से न केवल देश का औद्योगिक ढाँचा बदल जाएगा, वरन अमीर–गरीब की फाँक हर स्तर पर और चौड़ी विकास केवल होती जाएगी निवेश के नाम पर सार्वजनिक उपक्रमों की बिक्री सिद्धान्त यह तय कर देगी कि प्रगति निजी क्षेत्रों के बूते की बात है। उनके अकूत शोषण और बेरोजगारी को अनदेखा करके जो समाज बनेगा, उसमें हिंसा, घृणा व अपराधों में बढ़ोतरी होगी।

उपर्युक्त कुत्सित प्रभावों से समाज को अछूता रखने के लिए शास्त्री जी लिखते हैं कि, "याद रखिए अर्थ के लिए अर्थ आवश्यक नहीं है। अर्थ साध्य रुप में अनर्थ की सृष्टि करता है। जिसने अर्थ को साध्य माना उसका माथा खराब हुआ, वह सब प्रकार की बेईमानी करेगा, सब प्रकार की गलतियां करेगा तथा अन्याय अत्याचार करेगा।" [15] इसलिए अर्थ केवल साधन रुप में महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार से मानव जीवन में धर्म का भी महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म समाज व संस्कृति का अभिन्न अंग है। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के नैतिक तथा अध्यात्मिक पहलू से है जो व्यक्तित्व के लिए एक महान तत्व है। धर्म एक विशेष विश्वास है और यह शक्ति मानव शक्ति से आवश्यक रुप में श्रेष्ठ होती है। अलौकिक शक्ति से सम्बन्धित समस्त विश्वासों, भावनाओं और क्रियाओं के सम्मिलित रुप को ही धर्म कहते हैं।

धर्म का महत्व सामाजिक नियन्त्रण के एक शक्तिशाली साधन के रुप में भी अत्यधिक है। मानव व्यवहारों को नियन्त्रित करने को यह शक्ति धर्म को किसी बाहरी स्त्रोत से प्राप्त नहीं होती। वह तो स्वयं ईश्वर की इच्छा के रुप में अभिव्यक्त होती है। धर्म अनेक अच्छे आदर्शों, मूल्यों तथा जीवन के लक्ष्यों से सम्बन्धित होता है। धर्म व्यक्ति के लिए प्रेरणा बनता है। इसी के अन्तर्गत व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को संगठित व सन्तुलित रुप में विकसित करने का अवसर मिलता है। आज के परिप्रेक्ष्य में धर्म की विभिन्न अवधारणाओं के चलते शास्त्री जी कहते हैं कि, "परमात्मा एक है जिसे विद्वान विभिन्न नामों से पुकारते हैं। धर्म के साथ जिस सच्चिदानन्द स्वरुप का नाम जुड़ा है, वह सब विभेदों के बावजूद मूलतः एक है।" [16] महाभारत का उदाहरण देते हुए धर्म की भूमिका को शास्त्री जी ने इस तरह वर्णित किया है कि समस्त प्राणियों के प्रति मन, वाणी और कर्म से द्रोह का भाव न रखना, सबके प्रति अनुगृह सबके प्रति उदारता का भाव रखना धर्म है इसी से समाज व्यष्टि छोड़ समष्टि भाव की ओर अग्रसर होता है।

संदर्भ

1. प्रकाश त्रिपाठी (स0), विष्णुकान्त शास्त्री : सृजन के आयाम, पृ0 124
2. वही, पृ0 151
3. इन्द्रसिंह ठाकुर, आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के साहित्य में संवेदना एवं शिल्प का स्वरुप, पृ0 199
4. प्रेमशंकर त्रिपाठी (स0), जीवन पथ पर चलते–चलते, पृ0 25
5. वही, पृ0 26
6. इन्द्रसिंह ठाकुर, आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के साहित्य में संवेदना एवं शिल्प का स्वरुप, पृ0 201
7. प्रेमशंकर त्रिपाठी (स0), जीवन पथ पर चलते–चलते, पृ0 43
8. प्रकाश त्रिपाठी (स0), विष्णुकांत शास्त्री : सृजन के आयाम, पृ0 196
9. वही, पृ0 326
10. वही, पृ0 351
11. जुगल किशोर जैथलिया (स0), विष्णुकांत शास्त्री, चुनी हुई रचनाएं, पृ0 354
12. इन्द्रसिंह ठाकुर, आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के साहित्य में संवेदना एवं शिल्प का स्वरुप, पृ0 128
13. वही, पृ0 129
14. जुगल किशोर जैथलिया (स0), विष्णुकांत शास्त्री, चुनी हुई रचनाएं, पृ0 188
15. विष्णुकांत शास्त्री, ज्ञान और कर्म, पृ0 54
16. प्रकाश त्रिपाठी (स0), विष्णुकांत शास्त्री : सृजन के आयाम, पृ0 195